جون سنہ ۲۰۱۴ء

ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ

قَالَ اللّٰہُ تبارَکَ وَتعَالیٰ قَدۡ جَاءَ کُمۡ مِنَ اللّٰہِ نُوۡرٌ وَ کِتَابٌ مُبِیۡنٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب



نور ہدایت فاؤنڈیشن، حسینیہ غفران مآبؒ، چوک، لکھنؤ۔۳

R.N.I.No. UPBIL/2004/13526
Postal Regd. No.SSP/LW/NP-75/2014-16 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

Annual Rs. 200/- **Per copy-Rs. 20/-**

SHUA-E-AMAL

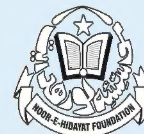
Lucknow

शुआ-ए-अमल

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

JUNE 2014





NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION

Imambara Ghufran Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Ph.:0522-2252230

बिस्मेही तआला

वर्ष 10 — अंक 10

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन की

इस्लामी, ज्ञान व शोध

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

जून 2014

शुआ-ए-अमल

"लखनऊ"

न्यास संस्थापन

15 जमादिलऊला 1424 हि० / 16 जुलाई 2003 ई०

पत्रिका विमोचन

15 जमादिलऊला 1425 हि० / जुलाई 2004 ई०

मिलने का पता

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत गुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ - 3

Phone No: 0522-2252230 Mobile No: 09335276180 — 09335996808

सै. कल्बे जवाद नक़वी प्रिन्टर, पब्लिशर और प्रोपराइटर ने मासिक शुआ-ए-अमल (उर्दू, हिन्दी) निज़ामी आफ़सेट प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ से छपवाकर आफ़िस नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन इमामबाड़ा गुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड लखनऊ-3 से प्रकाशित किया। सम्पादक : सै० मुस्तफा हुसैन नक़वी 'असीफ जाएसी'।

Per Copy 20/- Annual 200/-

R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526



Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10



WEBSITE:

www.noorehidayatfoundation.org
www.noorehidayatfoundation.com
www.naqeeblucknow.com

E_mail:

noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

वार्षिक अंशदान

1- एक साल के लिए 200/-
2- पांच साल के लिए 800/-
3- लाईफ़ मिम्बरशिप 4000/-

fo'k; lwph

जून 2014ई०

शाबानुलमुअज़्ज़म 1435हि०

नं०	लेख व लेखक	पृष्ठ

ज़िन्दगी का सिस्टम

y$ld %आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
l Eiknu %नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

1fdLr %23%

jet ku eghus dk pkn

मौसम का बदलना सूरज के लेहाज़ से होता है और इससे कुदरती (प्राकृतिक) बातों में फ़र्क़ पैदा होता है। नुजूमी (ज्योतिषि) लोग सितारों को दुनियां पर असर डालने वाले समझते हैं और वाक़ियों/घटनाओं का ताल्लुक़ इससे बताते हैं। इस्लाम मे न तो सूरज का लिहाज़ किया और न सितारों का। क्यों कि दोनों बातें अलग सी हैं। जो हिसाब जानते हैं वह समझें। उसनें चांद का ऐतबार किया है जिसकी बात महसूस की जा सकती है। अगर एक महीने में धोखा भी हो जाये तो दूसरे महीने में इसका सही होना पता चल जाएगा । आलिम से आलिम और जाहिल से जाहिल दोनों चाँद को अपनी आँख से देखकर महीने की शुरूआत और आख़िर का पता लगा सकते हैं। रमज़ान महीने को रोज़ों का ज़माना बनाया गया है। इसका भी ताल्लुक़ चाँद से है, जब चाँद हो गया तो रोज़ा वाजिब और फिर जब चाँद हो गया तो रोज़ों की मीआ़द (अवधि/Term) ख़त्म। इसकी जानकारी का अस्ली ज़रिया (देख लेना) (Observation) ही है। लेकिन अकसर ऐसा होता है कि इन्सान कुछ कामों में लगा हुआ है, इसलिये चाँद का पता लगाने के लिए उसे अपनी आँखों से देखने न जा सका। या आसमान में बादल छाये हुए हैं इसलिये चाँद हुआ और दिखाई न दिया। तो इसके लिये कुछ और ज़रिये भी रखे गये हैं। इसलिए दूसरा ज़रिया दो आ़दिल लोगों की गवाही। आ़दिल यानी जिसे अपने फ़र्ज़ कर्तव्य की पहचान और जिसकी परहेज़गारी (संयम) पर इत्मीनान हो। शर्त यह है कि इनकी बात के ख़ेलाफ़ कोई भरोसा न हो। यह जमीर (अन्तः करण) से ताल्लुक़ रखने वाली बात है। कभी ऐसा होता है कि बिल्कुल साफ़ बड़े–बड़े तेज़ नज़र वाले जवान आदमी चाँद को देखने की कोशिश कर रहे हैं, खुद आपकी भी नज़र अच्छी ख़ासी तेज़ है और आपने भी ख़ुद पूरी कोशिश से देर तक ढूढ़ा और चाँद दिखाई नहीं दिया और न शहर भर में किसी ने देखा। बस दो बुजुर्ग धुँधली निगाह वाले इन्सान गवाही देते हैं कि हमने चाँद देखा।

ये हैं तो मुत्तक़ी और परहेज़गार, यक़ीन है कि झूठ नहीं बोलेगें, मगर दिल कहता हे कि उन्हें धोखा हुआ है। चाँद हरगिज़ नहीं हुआ है। वरना आख़िर कोई और भी तो देखता। इस सूरत में मुझे अपने ज़मीर और इत्मीमाम के ख़ेलाफ़ इन दो आ़दिलों की गवाही मानने की ज़रूरत नहीं है।

(तीसरे)मुजतहिद का हुक्म है कि चाँद हो गया। शर्त ये है कि आपको इत्मेनाम हो कि मुजतहिद के पास चाँद का ऐसा सुबूत पहुँच गया है जो खुद हमें भी अगर पहुँचता तो हमें इस पर चलाना ज़रूरी (वाजिब) होता।

(चौथे) ये कि इस तरह चाँद हो जाना कि सबकी ज़बान पर हो कि चाँद हो गया जिससे इन्सान को यक़ीन पैदा हो जाए या ऐसा इत्मीनान जिसके ख़ेलाफ़ अ़क़्ली तौर पर शक करना सही न हो।

(पाँचवे) ये कि शाबान महीने के तीस दिन पूरे हो जायें। और ऐसे ही ज़रिऐ से शव्वाल (ईद का महीना) का चाँद भी साबित होगा जिसका नतीजा ये है कि रोज़ा रखना (ईद के दिन) इन्सान के लिये हराम हो जाए।

पहले के उलेमा और हदीसों पर रिसर्च करने वालों में एक बड़ी बहस चली थी कि माह रमज़ान तीस दिन से कम हो सकता है या नहीं। इस पर बड़े–बड़े रिसाले (रिसर्च की किताब/शोध–पत्र) लिखे गये। बात ये है कि कुछ हदीसें इसी तरह की आ गई है कि रमज़ान का महीना 30 दिन से कम नहीं होता। सूझबूझ वाले तहक़ीक़ (Research) करने वाले कहते हैं कि इसके मानी ये हैं कि सबाव माहे रमज़ान का बहरहाल पूरा

मिलेगा, चाहे चाँद 29 का ही क्यों न हो। यही खुदा के इन्साफ़ का तक़ाज़ा भी है, क्योंकि चाँद का 29 का हो जाना इन्सान के बस से बाहर है और हुक्म मानने बन्दे की नीयत ये है कि वह तीस (30) का भी महिना हो तो सब रोज़े रखेगा इसलिये कोई वजह नहीं कि 29 का चाँद होने से इसके सबाव में कमी कर दी जाए।

uh;r

दूसरे और तीसरे अध्याय में, नमाज़ और रोज़े के बारे में, इबादती वाजिब बातों की हक़ीक़त और नीयत के फ़लसफ़े पर काफ़ी ज़िक्र किया जा चुका है। रोज़ा भी इनमें से है जिससे रोज़े का सही होना नीयत पर निर्भर है। और बग़ैर नीयत रोजा सही नहीं हो सकता मगर बहस इस बात में पड़ गई है कि रमज़ान के पूरे महीने के रोज़ों के लिये एक नीयत काफ़ी है या हर रोज़े की नीयत अलग अलग होना चाहिये। इस बहस के फ़ैसले के लिये हमें कुछ शुरूआती चीज़ों को बयान करने की ज़रूरत है। जिन पर इसका दारोमदार है।

1. यह कि नीयत (मन से बना लेना) अक़ली चीज़ है। जो भी कर्म/काम ऐसा होगा कि इसका मक़सद किसी बाहरी फ़ायदे के तौर पर न रखा गया हो। इसे हाकिम के हुक्म (Order is order) की तरह से ही करना चाहिये। इसी तरह अगर मालूम हो जाये कि इस हुक्म का मक़सद फ़र्ज़ कत्तर्व्य का समझ पेश करना है तो भी अक़ल से इस काम को इरादे और फ़र्ज़ के एहसास के साथ पूरा करना चाहिए। इसी का नाम नीयत है, इसलिये नियत के बारे में अक़्ल का फैसला मानने के लायक़ है और किसी दलील के बयान की ज़रूरत नहीं है।

2. नियत इरादे (संकल्प) की एक ख़ास सूरत है और वह चीज़ है जो काम के लिये प्रेरित करती है। इसलिये इरादे की बात नियत से अलग नहीं होती है। जो अ़मल से जुड़ा हुआ हो लेकिन अगर काम से अलग है तो वह उकसा नहीं सकती। इसलिए वह चीज़ जो काम के वक़्त आने से पहले इन्सान में पाई जाती है इसे इरादा कहना आम बोलचाल में है। जिसका सच्चाई से लगाव नहीं है। वह इरादे के शुरूआती दर्जे (Step) हो सकते हैं जैसे इरादे का शौक़ पैदा होना मगर जब इरादा मज़बूत हो जाये तो यह मन के जोश का आख़री दर्जा है जिसके बाद काम का करना ज़रूरी हो जाता है और अगर जोश उस हद तक न पहुंचे तो काम का हो पाना मुमकिन नहीं है। मिसाल के तौर पर ये देखिए कि आपको इस वक़्त पक्का इरादा हो कि 6 बजे शाम को मैं अमीनाबाद जाऊँगा। लेकिन इस वक़्त अगर आप सो रहे हैं या जाग रहे हैं, मगर इस ख़्याल को भूले हुये हैं तो हरगिज़ आपका सुबह वाला इरादा काम के लिए उकसा नहीं पायेगा। इसी तरह अगर आप यूँही घर से निकल जायें और आंखे बन्द किये हुये इत्तेफ़ाक़ से अमीनाबाद पहुँच जायें तो ये एक बेअख़्तयारी (बेबसी) की बात समझी जायेगी। वह सुबह वाला इरादा इस काम की वजह नहीं होगा। इससे साफ़ ज़ाहिर हो गया है कि इरादा वह चीज़ है जिसकी वजह से काम अपने बस से होता है, वह वही चीज़ है जो काम से मिली हुई है। और काम से पहले इसका पाया जाना जबकि बीच में गैप (Gap) हो गया हो इस काम का कारण और इसके अख़्तयार बस से होने की वजह नहीं बन सकता।

अब ये देखिये कि 30 दिन के रोज़े जो रखे जाते है ये सब एक ही काम है या फिर अलग–अलग कई काम हैं। कोई शक नहीं कि काम की शुरू से आखिर तक लगातार होता रहता है और जब टूट गया और दोबारा शुरू हुआ तो ये काम चाहे तरीक़े और क़िस्म में पहले से एक हो मगर अपने में इससे अलग है। फिर जबकि हर रोज़े का ख़ात्मा अफ़तार पर टूट जाता है तो इन सब रोज़ो को एक काम कैसे समझा जा सकता है। बेशक इनमें से हर रोज़ा एक अलग हैसियत रखता है और उसका अपना एक अलग वजूद अस्तित्व है।

अब देखिये कि पहले रोज़े की जो नियत की थी चाहे वह सारे रोज़ो के लिए हो लेकिन पहले रोज़े से तो जुड़ी है और इस लिये इस रोज़े को पूरा करने के लिये आमादा कर सकती है। मगर बाद वाले रोज़ों के लेहाज़ से वह अलग होने की वजह से आमादा करने की सलाहियत नहीं रखती और इन रोज़ों के लिहाज़ से वह इरादा की इस मंज़िल पर है जो काम करने की वजह होती है। इसे अगर समझा जा सकता है तो इन रोज़ों का रिश्ता, इरादा और गन लेने से बस इससे ज़्यादा नहीं। अब अगर ये इरादा बाक़ी रहा और ध्यान के और लगन सारी बातें दूसरे रोज़े के मौक़े पर साबित हुये तो यही इरादे की शक्ल ले लेगा। और वह इरादा दूसरे रोज़े की नियत कहलाएगा। लेकिन अगर दूसरे रोज़े के रखने पर इसके मन में वह पहला ख़्याल न हो और ये भूल और भुलावे में हुआ तो वह इरादा

अपने वक़्त में सत्य हो चुका। अब इस वक़्त इसमें वह बात नहीं कि वही पहला इरादा इससे काम करा सके। फिर कैसे कहा जाता है कि वह इस दुसरे रोज़े के लिये भी नियत का दर्जा रखता है। ये फ़र्क़ का नतीजा दोनों तरह ज़ाहिर होता है जब एक रात शाम से कोई सोया और तीसरे दिन जागा। बीच का दिन सोने में चला गया, इसलिए नियत आज के रोज़े की नहीं हुई। लेकिन अगर वह पहली नियत जो 30 दिन के रोज़े की कर ली थी वह काम को कराने के लिए काफ़ी समझी जाये तो ये बीच वाला दिन रोज़े में जोड़ना पड़ेगा। दूसरी सूरत कि किसी दिन इसे रोज़े का ख़्याल ही न आया, बेशक इत्तेफ़ाक़ से यूंही फ़ाक़े से (खाये बग़ैर) भी रहा। और कुछ खाया पिया नहीं तो अगर पहली नियत को काफ़ी समझा जायेगा तो इस दिन रोज़ा सही माना जायेगा। बल्कि पहली नियत के काफ़ी समझने का तक़ाज़ा तो यह है कि अगर दिन भर खाता पीता भी रहे तब भी रोज़े में हिसाब होना चाहिये इसलिये कि रोज़े को तोड़ देने वाली चीज़ें जो हैं वह जानबूझ खाना ओर पीना है। जिस तरह अगर आज ही रोज़े की नियत कर चुका होता तो फिर अगर भुले से ये कुछ खा पी लेता तो रोज़ा बातिल (ग़लत) न होता। ऐसे ही अगर पहली नियत काफ़ी हो तो इस शख़्स के दिन भर खाने पीने से रोज़ा ग़लत न होता। जबकि ये बिल्कुल ग़लत है। मालूम हुआ कि पहली नियत रोज़े को सही होने के लिए काफ़ी नहीं है इसलिये एक और नतीजा निकलता है वह ये है कि अगर आप रात के किसे हिस्से में इस नियत से कि अब हम रोज़ा रखेगें और आंख न खुली और दोबारा नियत करने का मौक़ा न मिला, यहाँ तक की सुबह हो जाये, या दोपहर का दिन भी चला जाये तो रोज़ा सही होगा, क्योंकि ये पूरा ज़माना उन तमाम चीज़ों को छोड़ने के वक़्त से अफ़तार के वक़्त तक लगातार जुड़े होने की वजह से एक (अकेला) काम है और वह नियत के साथ हो रहा है जो इससे जुड़ा है। लेकिन अगर इस नियत से सोंचे कि अभी हम उठेगें और खाये पियेगें फिर रोज़ा रखेंगे और इसके बाद फिर आँख न खुली या खुली लेकिन रोज़े का ख़्याल न आया और नियत न पैदा हो यहा तक की दोपहर भी चली जाये तो ये रोज़ा गिनती में नहीं आयेगा क्योंकि वह नियत जिसके साथ वह सोया था उसी वक़्त से न था बल्कि किसी बाद के वक़्त में उठने पर खाने पीने के बाद की नियत है और वह वक़्त और मौक़ा इस नियत से अलग था और दूरी रखता था। इसलिये ये नियत काम को करने के लिए आमादा नहीं कर सकती थी और वह मौक़ा जब आया तो उस वक़्त उसने नियत नहीं हुई इसलिए नियत जो काम के सही होने के लिये ज़रूरी है वह नहीं हुई।

jkst sdsl ghgksuses,d [kkl fj;k;r

उसूल से अगर कोई काम बहुत से हिस्सो से मिलकर बना हो या एक ख़ास मुद्दत (अवधि/Period) तक बाक़ी रहने वाला हो तो इन सब हिस्सों को करने और इस सारी मुद्दत मे काम को नियत व इरादे के साथ होना चाहिये। तभी वह काम सही होगा लेकिन एक हिस्सा (Part) भी कम हो गया या वक़्त का कोई हिस्सा भी उससे अलग हो गया तो काम को बातिल (ग़लत) हो जाना चाहिये। और अगर क़ानून में कोई ख़ास बयान इसके ख़ेलाफ़ न आये तो फ़ायदे नियम से यही होना चाहिए। मगर जिस तरह जमाअ़त की नमाज़ में ये रियायत की गई है, अगर रुकू में भी शामिल हो जाये तो एक रकअ़त हिसाब में आ जाती है और नमाज़ सही हो जाती है। इस तरह रोज़े के बारे में शरीयत ने एक ख़ास रियायत की है कि वाजिब रोज़े में अगर इन्सान ने कुछ खाया पिया न हो तो ज़वाल (दोपहर) के पहले तक नियत हो सकती है और मुस्तहब (सुन्नती) रोज़े में इससे भी ज़्यादा रियायत की गई है। यानी दोपहर के बाद भी सूरज डूबने के पहले जिस वक़्त से रोज़े का इरादा पैदा हो जाये शर्त यह है कि कुछ वह चीज़ें जो रोज़े को तोड़ देती हैं उनका उस दिन इस्तेमाल न हुआ हो तो वह रोज़ा हिसाब मे आ जायगा। ये सिर्फ़ ख़ुदा की एक दया व एहसान और इन्सान के इबादत की तरफ़दिल होने को बढ़ावा देना है। बदक़िस्मत है इन्सान अगर अब भी सवाब की नेमत के पाने की तरफ़ क़दम न बढ़ायें।

,d vkSjs;k;r

इबादत को शुरू करने के बाद अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। इरशाद हुआ है *''ला तब तलू आमा–लकुम'* हालांकि दुसरे माने भी है, लेकिन उलमा ने इससे ये नतीजा निकाला है कि काम को शुरू करने के बाद आखिर तक पहुँचाना ज़रूरी है। अगर नमाज़ का वक़्त ज़्यादा हो यानी अगर नमाज़ को तोड़ डाले

तो फिर भी वक़्त के अन्दर नमाज़ पढ़ लेगा फिर भी इतना वक़्त है कि दुबारा नमाज़ पढ़ सकता है। लकिन बिला ज़रूरत उस नमाज़ को तोड़न जायज़ नहीं है, लेकिन रोज़े के बारे में ये ख़ास रियायत रखी गई हे कि वाजिबी रोज़ा ऐसा हो जिसे बाद में भी अदा (पूरा) किया जा सकता है। जैसे रमज़ान महीने के क़ज़ा रोज़े जबकि अभी साल के दिन उन रोज़ों की गिनती से ज़्यादा बाक़ी हो या सारा दिन (निश्चित) न किए गए नज़र का रोज़ा तो ज़ोहर (यानी दोपहर) के पहले तक इन्सान उसे तोड़ सकता है।

fj;k,r ij jsk,r

अकसर ऐसा होता है कि शाबान की 29 तारीख को चाँद में ये शक होता है कि हुआ कि नहीं। 30 तारीख़ तक शक है शायद चांद हो गया हो तो आज रमज़ान की पहली तारीख़ है। लेकिन चांद का सबूत नही है। इसको ''यौमुश शक'' कहते है, यहाँ चूँकि रमज़ान महीने का सुबूत नहीं है और पहली हालत के बाक़ी रहने से आपका दिन शाबान महीने ही में शरीयत के हुक्म के लेहाज़ से शामिल समझा जाये इसलिये ये हक़ नहीं है कि आज का रोज़ा रमज़ान महीने की नियत से रखा जाये लेकिन अगर रोज़ा छोड़ दे तो माहे रमज़ान के इस एक रोज़े की ख़ास बरकत से महरूम (वन्चित) रह गया। दूसरे ये कि बाद में क़ज़ा करना पड़ेगी जो जी पर बहुत दूभर हो जाता है। और बिला वजह ऐसा होना भी नहीं चाहिए। इसलिये ये सूरत रखी गई है कि बेहतर है कि आज का रोज़ा ''मुस्तहब'' की नियत से रख ले फिर अगर मालूम हुआ कि ये दिन रमज़ान महीने का था तो वह रोज़ा इसी हिसाब में आ जायेगा। और फिर क़ज़ा की ज़रूरत न होगी। यह भी ख़ुदा की एक दया और एहसान है वरना उसूल से जब वह शाबान महीने की नियत से रखा या तो इसको माहे रमज़ान में आने की वजह क्या है? मगर वह तो नियत के अन्दर के ज़मीर (अन्तः करण) की गहराई को भी देखता है। इसे मालूम है कि इसने ''मुस्तहब'' (सुन्नत) की नियत सिर्फ़ इसलिये की है कि इसके जानकारी के सीमित ज़रिये से चाँद साबित नहीं हुआ लेकिन असल में इसका रोज़ा रखना आज सिर्फ़ इस बरकत को हासिल करने और इस फ़र्ज़ को नज़र अन्दाज़ न होने के लिये है जो रमज़ान महीने के रोज़े की शक्ल में इस पर लागू है इसलिये वह इस नियत के अन्दुरूनी जज़्बे पर सवाब देने के लिये तैयार है और इस रोज़े को रमज़ान महीने में हिसाब कर लेता है।

jks s dks NksMus dk dQ¶Qkjk

एक दिन भी रोज़ा अगर जान बुझकर छोड़ दे तो कफ़्फ़ारा वाजिब है। साठ मिस्कीनों (ग़रीब जिनका खाना पानी पूरा न पड़ता हो मगर भीख मांगते हों) को खाना खिलाना या दो महिनों के लगातार रोज़े रखना या गुलाम ख़ुदा की राह में आज़ाद करना।

आज जबकि गुलाम बेचने का क़ानून नहीं है तो पहली दो सूरते बचती है, मगर याद रखना चाहिये कि कफ़्फ़ारा एक जुर्माना है जिसका अदा करना (दे देना) इन्सान के लिये ज़रूरी है। लेकिन इसके ये माने नहीं कि छूटे हुये रोज़े के कफ़्फ़ारे के अदा करने के बाद जुर्म बाक़ी नहीं रहा। वह गुनाह जो रोज़ा छोड़ने का हो गया बहरहाल गुनाह है। और इसके लिये तौबा की ज़रूरत है। मतलब ये है कि ऐसा न हो कि कोई पैसे वाला अपना यही तरीक़ा बना ले कि रोज़ा छोड़ दिया करे और हर रोज़े के बदले साठ मिस्किनों को खाना खिला दिया करें। ये काम इसका हरगिज़ सही नहीं है और वह रोज़े को बिलावजह छोड़ने की वजह से आख़िरत के अज़ाब से बच नहीं सकता, जिस तरह अगर हराम काम के साथ इन्सान रोज़े को छोड़ दे। मसलन रमज़ान महीने के रोज़े के बजाये मआज़ल्लाह वह भाराब पिये। या नाजायज़ तौर पर औरत से ताल्लुक़ करे, तो ऐसे के लिये तीनों कुफ़्फ़ारे एक साथ देना ज़रूरी है। मगर इससे न इस हराम काम का हराम होना दूर होगा और न रोज़े को छोड़ने की अहमियत। बेशक अगर ये कफ़्फ़ारा भी न दे तो यह एक तीसरा जुर्म होगा। इस गुनाह से बचने के लिये अक़ली तौर पर कुफ़्फ़ारा दे देना लाज़िम है।

सच्चाई यह है कि ये वाजिब चीज़ों जिसमें ख़ास वक़्त की शर्त है और जिनकी क़ज़ा का बाद में हुक्म है उनमें एक मक़सद तो अस्ल कर्म का पूरा करना है दूसरा मक़सद उनका उस ख़ास वक़्त में करना है। अगर ऐसा न होता और अस्ल मक़सद सिर्फ़ काम का कर लेना होता तो वाजिब में ख़ास वक़्त के साथ हुक्म ही न होता बल्कि चाहे जिस वक़्त कर लेने का ही हुक्म होता। और अगर सिर्फ़ एक ख़ास वक़्त में उसका होना मक़सद होता तो फिर वक़्त गुज़रने के

बाद उसकी क़ज़ा का हुक्म न होता। लेकिन दो मक़सद अलग–अलग हैं। इसलिये अगर अस्ल वक़्त पर न कर पाये तो गुनाहगार होगा इसलिये कि वक़्त की अहमियत हाथ से चली गई लेकिन फिर भी हुक्म है कि इसके दुसरे वक़्त में करे ताकि वह दुसरा मक़सद यानी अस्ल काम तो पूरा हो जाये। अगर इसने बाद में इस काम को नहीं किया तो ये दूसरा गुनाह होगा। यूहीं जिस जगह कफ़्फ़ारा का हुक्म है ये एक तीसरा मक़सद है और वह यह है कि इस जुर्म का एक बदला (प चाताप) वह इस दुनिया में भी दे दे लेकिन न इससे उस खास वक़्त में होने का मक़सद पूरा होता है ताकि वह गुनाह दूर हो। न अस्ल काम कर पाता है जिससे क़ज़ा की ज़रूरत न हो बल्कि इस कफ़्फ़ारे के अदा करने के साथ अस्ल अ़मल को अन्जाम देने के लिये क़ज़ा भी ज़रूरी है और वक़्त पर न करने के गुनाह के लिये सच्चे दिल से तौबा की भी जरूरत है इसके साथ फिर वह कफ़्फ़ारा भी अदा करे तो इन्शाअल्लाह फिर अख़िरत में कोई पूछ–ताछ न होगी।

इस हुक्म के बारे में कि इस क़ज़ा व कफ़्फ़ारे से असल वक़्त की जो जा चुका है फिर नहीं मिल सकता और इसलिये इन्सान को इस पर पहतावे की ज़रूरत है। मासूम[अ0] भी हदीस भी मौजूद है, ग़ौर कीजिए समा बिन महरान की रवायत, इनका बयान है कि मैने मासूम अ0 से पूछा कि उसके बारे में जो रमज़ान महीने में जानबुझकर अपनी औरत से मिलन करें, हज़रत अ0 ने फ़रमाया इसका कफ़्फ़ारा है गुलाम आज़ाद करना और साठ मिस्कीनों को खाना खिलाना और दो महीने के लगातार रोज़े रखना। इसके अलावा उस दिन की क़ज़ा भी ज़रूरी है और भला वह दिन अब कहाँ नसीब? इस से ज़ाहिर है कि इस दिन रोज़ा रखने से जो मक़सद था वह अब नहीं मिल सकता, इसलिये ये नहीं समझना चाहिये कि ये क़ज़ा व कुफ़्फ़ारा इसका पूरा–पूरा बदल हो गया।

हमारे वालिद की तक़लीद करने वाले (फ़तवे पर चलने वाले) एक अमीर साहब ने यह पूछने के बाद कि एक रोज़े का कफ़्फ़ारा जो होता है अपना दस्तूर (नियति) बना लिया और वह रमज़ान के रोज़े को छोड़ दें और फिर साठ आदमियों को खाना खिला दिया करें, इस पर जनाब ने इस सवाल का विस्तार पूर्वक जवाब लिखा जो यहाँ बयान किया जा रहा है।

l oky

अगर कोई आदमी रमज़ान महीने का रोज़ा बिना किसी शरीयत में जायज़ वजह से जान बूझकर न रखे, यह ख़्याल करके कि एक रोज़े का क़ज़ा या कफ़्फ़ारा दे दूंगा, ये काम इसका जायज़ है या नाजायज़? और वह आदमी हमेशा ऐसा ही करे कि रमज़ान का रोज़ा बिला वजह जानबूझकर न रखे और क़ज़ा कफ़्फ़ारा को अदा कर दिया करे तो गुनहगार होगा या नहीं और क़ज़ा व कफ़्फ़ारा रमज़ान के रोज़ों के लिए काफ़ी (पूरक) हो जायेगा या नहीं। जवाब विस्तार पूर्वक दें?

t okc

ये बात छिपी न रहे कि शरीयत में वाजिब कई तरह का है, सब वाजिब की क़िस्मों में जो हमारे लिये बहस का टॉपिक/विषय है वह वाजिब ऐनी और वाजिबे तख़ईरी है। वाजिबे ऐनी और तख़ईरी में फ़र्क़ यह है कि वाजिबे ऐनी वह वाजिब है जिसका बदल और जिसकी मसलहत को पूरा करने वाला कोई दूसरा काम नहीं होता। लेकिन वाजिब तख़ईरी में उस मसलहत के पूरा करने वाले जो इस वाजिब में शरियत की नज़र में है, दो काम या ज़्यादा होते हैं। मसलन नमाज़ जुमा और ज़ोहर की नमाज़ अगर वाजिबे तख़ईरी के क़ायल हो तो नमाज़ जुमा और नमाज़ ज़ोहर इस मसलहत के लिये जो शरीयत की नज़र में है काफ़ी हैं। इसका नतीजा ये है कि वाजिबे तख़इरी में काम करने वाले को शरीयत की तरफ़ से अख़्तियार (चुनाव) दिया जाता है कि वह चाहे इस काम को करे चाहे दूसरे काम को (यानि चाहे नमाज़े जुमा पढ़े या नमोज़े ज़ोहर), मगर वाजिब ऐनी में दो कामों या ज़यादा में अख़्तियार नहीं होता बल्कि खुद इस काम का करना ज़रूरी होता है। हाँ ये और बात है कि अगर शरियत की नज़र में इस काम को अंजाम देने से मजबूर हो या नुक़्सान के डर वग़ैरह की वजह से तो दूसरा काम मजबूरी या बेबसी की हालत में इसका बदल रखा जाएगा जैसे तैयम्मुम मजबूरी या नाचारी की हालत में वज़ू का बदल है।

नमाज़, रोज़ा वाजिबे ऐनी में से हैं, इसलिए कोई दुसरा काम इस मक़सद को पूरा करने वाला नहीं समझा जा सकता, इसलिये अगर कोई आदमी रोज़ा

और नमाज़ छोड़ दे तो चाहे बाद में क़ज़ा भी कर ले या रोज़ा जानबूझ कर बिला वजह या फिर बिना किसी शरीयत में जायज़ वजह के छोड़ कर कफ़्फ़ारा या सिर्फ़ क़ज़ा, छोड़े गये रोज़े या नमाज़ के फ़ायदे को पूरा नहीं कर सकता और इससे अस्ल काम को इस वक़्त के छोड़ने का गुनाह ख़त्म नहीं हो सकता जब तक कि वह तौबा न कर ले। इसी तरह अगर तौबा के बाद तलाफ़ी माफ़ात (जो मिहगया या छूट गया उसकी भरपाई) न करे और क़ज़ा व कफ़्फ़ारा या क़ज़ा रोज़ा या नमाज़ के छोड़ने के बाद न करें तो सिर्फ़ तौबा काफ़ी नहीं। अगर क़ज़ा व कफ़्फ़ारा रोज़ा मे या खाली क़ज़ा नमाज़ में इस इबादत के फ़ायदे को पूरा कर दे तो नमाज़ रोज़ा वाजिब ऐनी न रहेगा बल्कि वाजिब तख़इरी हो जायेगा और ये एक राय से बातिल (ग़लत) है।

ये ख़्याल कि छोड़े गये रोज़े और नमाज़ के बाद जो हुक्म था वह कर लिया यानी छोड़े गये रोज़े में क़ज़ा कफ़्फ़ारा और छोड़ी गई नमाज़ में क़ज़ा कर लिया गया तो अब सज़ा क्यों हो और अगर सज़ा बहरहाल मिलना है तो फिर क़ज़ा व कफ़्फ़ारा से क्या फ़ायदा, ये सोचना सही नहीं है क्योंकि हमारा फ़िरक़ा ''इसना अशरी'' यह मानता है कि शरीयत के हुक्मों में कोई न कोई मसलहत (सम्मति) और मक़सद छुपा होता है। बेशक कभी मसलहत काम में होती है और वक़्त और जगह का की बात नहीं होती और कुछ काम ऐसे है जिनमें वक़्त या जगह का ख़ास ख़याल रखना ज़रूरी होता है।

रोज़ाना की नमाज़ और रमज़ान मुबारक के रोज़े ऐसे ही वाजिब हैं जिनमें वक़्त को हाथ है। रमज़ान महीने के रोज़े और मसलन नमाज़ ज़ोहर के छोड़ने के बाद वह खास वक़्त हाथ नहीं आ सकता। इसलिए इस खास वक़्त की अहमियत के हाथ से चले जाने पर अगर क़ज़ा व कफ़्फ़ारा के बाद या सिर्फ़ क़ज़ा के बाद गुनाह बाक़ी रहे तो कोई अजीब बात नहीं है। अब रह गयी यह बात कि जब गुनाह बाक़ी रहता है तो क़ज़ा व कफ़्फ़ारा का हुक्म क्यों हुआ? इसका जवाब यह है कि क़ज़ा व कफ़्फ़ारा के बाद रोज़ा और नमाज़ के वक़्त की क़ैद (बन्धन) के साथ मक़सद नहीं मिलता मगर असल काम का मक़सद मिल सकता है। इसलिये इतनी सज़ा कि जो असल अ़मल के बिल्कुल (ख़त्म हो जाने) होने की शक्ल में होती है, मुमकिन है कि इस कफ़्फ़ारे के बाद न हो।

दूसरी फ़रार (लाग) यह है कि रोज़ाना की नमाज़ और रमज़ान के रोज़े की चाही गयी है यानी नमाज़ ज़ोहर मसलन और रोज़ा रमज़ान में धर्म शरीयत चाहती है सिर्फ असल काम नहीं है बल्कि असल काम का करना एक चाह है। और दूसरा मतलब ये है कि ये काम वक़्त में वाक़्ये हो इसलिए बाद क़ज़ा नमाज़ रोज़े के तदारक (बदल चाह) पहले चाह यानी असल काम के छोड़ने का हो जाता है। इसलिए इसकी सज़ा, न होगी मगर दुसरा मतलब यानी इस काम का साझ में ज़ाहिर होना इसका तदारक नहीं होता, इसलिए क़ज़ा व कफ़्फ़ारा के होते हुए रोज़े के वक़्त पर अदा न होने की सज़ा बाक़ी रहेगी। इसके लिये तौबा की ज़रूरत है।

इसलिए पांचों वक़्त की नमाज़ में से किसी भी नमाज़ को छोड़ना या विलावजह रोज़े को छोड़ना अगर इस इरादे से हो कि बाद में क़ज़ा या कफ़्फ़ारा अदा कर लेगा तो हराम है और सिर्फ़ क़ज़ा नमाज़ में या क़ज़ा के साथ कफ़्फ़ारा रोज़े में इस गुनाह के दूर करने की वजह नहीं बन सकता बल्कि इस तरह सूरत अख़्तियार कर लेना और क़ज़ा व कफ़्फ़ारा को इस इरादे से अदा करना कि यह अस्ल अ़मल का एक मुस्तक़िल Regular/नियमित बदल है, ये बिदअ़त (मज़हब में नया करना) है। और जैसा कि कुछ ओलेमा के मसलों के जवाब में और कहने में ये है कि बिला वजह यानि बिना किसी शरयी वजह के रोज़े को छोड़ने पर क़ज़ा और कफ़्फ़ारा के बाद अ़ज़ाब नहीं है ये उसी वक़्त होगा जब क़ज़ा व कफ़्फ़ारा 'तौबा' के बाद अन्जाम दिया जाए।

jls sl st (ysbLyke ds'kq dsnlsdD;+s

इताअत (आज्ञापालन) और नाफ़रमानी के नतीजे का एक–एक नमूना

रोज़े के बारे में इस्लाम के इतिहास (History) में दो याद रखने वाले वाक़्यें हैं। जिनमें इन्सान की इताअ़त और नाफ़रमानी के आपस में टकराते दो अलग–अलग नमूने सामने आते है जिनका नतीजा हमेशा के लिये याद रखने को शरीयत के हुक्मों में बाक़ी है। यह है कि इस्लाम में शुरू में ये हुक्म था कि अगर कोई रोज़े के बाद कुछ खाना खाये बग़ैर

शाम को सो जाये तो फिर सो जाने के बाद कुछ खाना पीना हराम था। इत्तेफ़ाक़ से ख़न्दक़ (गड्ढ़ा/खाईं) की लड़ाई रमज़ान महीने में हुई। पैग़म्बर[स०] ने हुक्म दिया कि सहाबाए[रज़ी०] ख़न्दक़ खोदने में लग जायें। अरब की धूप और पथरीली ज़मीन दिन भर रोज़े की हालत में ख़न्दक़ का खोदना। रसूल[स०] का एक बूढ़ा सहाबी जिसका नाम रवायतों में अलग–अलग मिलता है। अबुनसीर मुरादी की रवायत जो इमाम मोहम्मद बाक़िर[अ०] और इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] से है इसमें ख़वात बिन जबीर अंसारी और तफ़सीर नुमानी में अमीरूलमोमिनीन[अ०] की रवायत (दोहराना) से मुतयिम बिन जबीर नाम मिलता है। वह ख़न्दक़ खोदने के बाद अफ़्तार के वक़्त थके मांदे अपने खैमें में आये अपनी बीबी से पूछा कि कुछ खाना है? उसने कहा ठहरो! सोना नहीं। मैं अभी खाना लेकर आती हूँ। ये बेचारे दीवार से लगकर बैठ गये। इत्तेफ़ाक़ से नींद आ गयी। बीवी खाना लेकर आयी और जगाया तो कहाः ''अब मेरे लिए कुछ खाना हराम है। मैं सो गया था।'' रात यूँ ही गुज़र गयी। सुबह को रोज़े पर रोज़ा रखा और ख़न्दक़ खोदने के लिए आ गये। पर कमज़ोरी से निढ़ाल होकर बेहोश हो गये।

रसूल[स०] ने हालत देखी तो वाक़िया पूछा इस पर आयत उतरीः ''खाओ और पियो उस वक़्त तक जब तक सुब्ह की सफ़ेद लकीर रात की काली लकीर से उभरे।'' अब इस आयत की वजह से पहला हुक्म ख़त्म हो गया और ये क़ानून हो गया कि रात को सो भी जाओ तो सुबह सादिक़ (सेहरी का आख़िरी वक़्त) तक खा पी सकते हो। ये उस यह उसी अनोखी (Extra ordinary) तरह जमे रहने और अडिग ठहराव और खुदा के हुक्म पर चलने के रास्ते में कठिनाई और कड़ाई सहने का नतीजा था कि शरीअत ने हमेशा के लिए आसानी कर दी। अब इसी मौक़े का दूसरा नमूना पेश है। ये भी हुक्म था कि रमज़ान महीने में रात के वक़्त भी औरतों के पास जाना जायज़ नहीं। कुछ लोगों ने इसके ख़िलाफ़ काम किया तो इस हुक्म को भी ख़त्म कर दिया गया और आयत आई *''अहल–ल–कुम लैलतस्सया–मल–रफ़सा इला निसाएकुम''*

''हलाल किया गया तुम्हारे लिये रोज़े की रात में अपनी औरतों के पास जाना''। तफ़सीर नुमानी में है '' मुसलमानों में कुछ जवान थे जो इस हुक्म को बर्दाश्त न करके रातों को छिपकर अपनी औरतों से मिला करते थे। इस बारे में पैग़म्बर[स०] ने अल्लाह से सवाल किया तो ये आयत उतरी।'' ये अजीब बात है कि शिया रवायत में इस बारे में इतनी ही बात बयान की गई है मगर सुन्नी मुफ़स्सिरों (क़ुर्आन के माने मतलब बयान करने वाले उलमा) ने इस आयत की शान में साफ़ परदा उठा दिया और नाम भी बता दिया है कि ये किसके बारे में नाज़िल हुई (उतरी) है। देखिए इस्तीआब हैदराबाद की छपी जिल्द–1 पेज नं0 334'' हरमाह बिन अन्स के हालत में लिखा है''

''यह (आयत) उमर बिन खत्ताब के कारण से उतरी है।''

सवाइक़े महर्रक़ा मिस्र की छपी पेज नं 60 में भी इसका खोलकर बयान है कि हुक्म ख़त्म हुआ था उस इताअ़त (खुदा के हुक्म पर चलने) से भी और एक हुक्म ख़त्म हुआ इस अवज्ञा/न चलने से भी। मगर यहाँ जिस तरह डाँट डपट के कोड़े लगाये गये है वह एक ग़ैरतदार (शलील) के लिये बहुत बड़ी चीज़ है।

आयत है *''अल्–लमल्–लाहु अन्नकुम तख़तानू–न अनफुसकुम फ़ताबा अलैकुम व अफ़ा अ़न्कुम फ़ल आना बाश्रूहुन्ना''*

''अल्लाह को मालूम है कि तुम लोग अपने नफ़्सों (जी जान) की ख़्यानत (घपला) करते रहते थे, अब खुदा ने तुम्हारी तौबा कुबूल स्वीकार की और माफ़ कर दिया और अब तुम उनसे रात के वक़्त रिश्ता रख (मिल) सकते हो''। ये माफ़ी इताअ़त (अल्लाह के हुक्म पर चलने) को पूरा न करने का सर्टिफिकेट है। जिस तरह पहले वाक़्ये में कामयाबी का इनाम था नतीजा एक ही है और उसकी बुनियाद मज़बूत है। मगर इसके साथ पैग़म्बर[स०] के असहाब के अलग–अलग किरदार की यादगार बाक़ी है।

jkst s+ ds Qt+Z d ŸlQ;Z ds l kFk xjhcksa dk i kyu&i ks"k.k

रोज़ा खुदा की तरफ़ से एक निजी फ़र्ज़ है, जिसका मक़सद ज्ञान का पाक है, मगर इसके साथ शरीयत ने रोज़ा अफ़तार के फ़ायदे बयान करके ग़रीबों के पेट भरने का भी सामान किया है। ये फ़ायदे इतने ज़्यादा हैं कि मुर्दा दिल इन्सान का भी दिल चाहने लगता है कि इस सवाब को हासिल करे और फिर इसमें इतना ज़्यादा फैलाव किया गया है कि हर

ग़रीब इस को हासिल कर सकता है।

देखिये–

1. हज़रत रसूल[स०] का इरशाद (सुन्कयन)–

जो आदमी इस महीने में किसी रोज़ेदार का रोज़ा खुलवाये उसको खुदा के यहाँ ये सवाब मिलेगा कि जैसे उसने गुलाम को राहे खुदा के लिए में आज़ाद किया और उसके पिछले गुनाहों को माफ़ किया जायेगा।''

किसी ने कहा या रसूल[स०] हर आदमी हम में से इतनी हैसियत नहीं रखता कि किसी का रोज़ा खुलवाये। हज़रत ने फ़रमाया कि ''ख़ुदा करीम (महान–दयालु) है वह ये सवाब उसको देगा जो सिर्फ़ एक ज़रा से दूध या ठण्डे पानी या कुछ खजूरों से किसी का रोज़ा खुलवा दे जबकि इससे ज़्यादा न कर सकता हो।''

2. इमाम मोहम्मद बाक़िर[अ०] की रवायत है कि '' जो किसी मोमिन का रोज़ा खुलवाये उसे उतना ही सवाब मिलेगा जो खुद रोज़ा रखने का सवाब है।''

3. इमाम मूसा काज़िम[अ०] की रवायत है कि '' तुम्हारे अपने मोमिन भाई के रोज़े को खुलवाना खुद तुम्हारे रोज़े के सवाब से ज़्यादा है।''

4. इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] का इरशाद है कि ''तुम्हारा अपेन मोमिन भाई का रोज़ा खुलवाना और उसके दिल को खुश करना खुद तुम्हारे रोज़े से ज़्यादा सवाब रखता है।''

5. इमाम मोहम्मद बाक़िर[अ०] की रवायत है ''एक मोमिन का रोज़ा अपने घर में बुलाकर खुलवा दो (ये चीज़) मुझको इस बात से ज़्यादा पसन्द है कि मैं इतने इतने आदमी इस्माइल की औलाद (सन्तान) में से आज़ाद कर देता।''

और भी रवायतें अफ़तार कराने के सवाब में है मगर ये हदीसें मैने इस लिये बयान की हैं कि इनमें से कुछ ख़ास नतीजे तक पहुँचता हूँ जो नीचे लिखे जा रहे है।

igyh gnhl

इससे ये साबित होता है कि रोज़ा अफ़तार कराने का सवाब इतना सस्ता नहीं है कि जो हर कोई सिर्फ़ एक दाना ख़जूर या थोड़े से पानी से पा जाये, बल्कि उन लोगों के लिये जो पैसे वाले हैं उनके लिए इतनी मेक़दार (Quantity) काफ़ी नहीं है। उन्हें अफ़तार में अपनी हैसियत के मुताबिक़ खाना खिलाना चाहिये। ये सिर्फ़ उन लोगों के लिये है जो सिर्फ़ इतनी ही हैसियत रखते हैं और हक़ीक़त यह है कि एक ग़रीब और मोहताज (दरिद्र) फ़ाक़ा करने वाले के लिये कभी–कभी एक दाना खजूर इससे ज़्यादा अहमियत रखता है जितनी कि एक अमीर के लिये पूरे इंतेजाम के साथ खाना। ये खुदा की बड़ी दया है कि उनके लिये जिनका हौसला खुदा के पैदा किये हुओं (सृष्टि) की सेवा के लिये ऊँचा है मगर इनकी हैसियत की चादर उनके लिये आरजुओं के पूरे होने की गुन्जाइश नहीं रखती। खुदा ने इनके लिये इनकी नियत के खारेपन और ज़मीर (दिल) की सच्चाई की क़द्र करते हुए इतनी ज़्यादा गुंजाइश पैदा की है कि उनसे जो कुछ भी मुम्किन हो सके उससे पीछे न हटें। उन्हें वही सवाब मिल जायेगा जो एक मालदार और हैसियत वाले इन्सान को अपनी हैसियत के मुताबिक़ रोज़ा अफ़तार कराने में मिलेगा। मगर इसके यह मानी नहीं कि यही फैशन बना लिया जाये कि रमज़ान महीने में एक ख़जूर दिया और अपने नज़दीक रोज़ा अफ़तार कराने के सवाब के हक़दार बन गये। ऐसे लोग जो ज़्यादा हैसियत रखते हैं, इस एक छुहारे को दे देने से हरगिज़ इस सवाब के हक़दार नहीं हो सकते जो मोमेनों का रोज़ा अफ़तार कराने के लिए खुदा ने रखा है।

nwljh vlS rlh jhjok;r

ये है कि तुम्हारा रोज़ा खुलवाना सवाब में खुद तुम्हारे रोज़ा रखने के बराबर या इससे बढ़ा हुआ है। इसका मतलब मुस्तहब रोज़ा है, क्योंकि सवाब की बराबरी कही जा रहा है, इसलिये इसका नतीजा वही ज़ाहिर हो सकता हे जहाँ कि सिर्फ़ सवाब का सवाल सामने हो। ये नही समझना चाहिये कि वाजिब रोज़े के बजाय अगर किसी मोमिन का रोज़ा खुलवा दिया तो सवाब वही मिल गया इसलिउ रोज़े की ज़रूरत न रही। ये ख़्याल ग़लत है, इसलिये कि वाजिबी रोज़े में सिर्फ़ सवाब नहीं है बल्कि इसके छोड़ने में सज़ा भी है। और इसका बदला दूसरे का रोज़ा खुलवाने से नहीं होगा। बेशक इस रवायत का नतीजा ये हो सकता है कि अगर इन्सान के लिये किसी वजह से दो सूरते सामने हो कि वह खुद सुन्नती रोज़ा रखे और अपने रोज़े की अफ़तारी का सामान इकट्ठा करे तो खुद रोज़ा न रखे और किसी दूसरे मोमिन के रोज़ा खोलने का सामान इकट्ठा कर दे तो इसके लिये दूसरी सूरत

¼cfd;k ist ua0 13 ij——½

तलाक़ और जहेज़

हमारे समाज के दो नासूर

eQfDdjsbLyle MkWVelsgkuk lS dYcsl kfnd+ lkgc fdCyk

हमारे समाज में दो सवाल ऐसे हैं, जिसमें से एक सुन्नी भाइयों के लिए और दूसरा सुन्नी और शिया दोनों के लिए रिसता हुआ नासूर बन गये हैं। अगर मुझे अधिकार हो तो कहना चाहुंगा कि यह दूसरा जहेज़ वाला सवाल हिन्दू भाइयों में और ज़्यादा भयानक बन गया है अगर इन नासूरों की तुरन्त रोकथाम न हुई तो आगे इनके हद से ज़्यादा ख़तरनाक, (घातक) नतीजे निकलेंगे।

पहला सवाल है तलाक़ का, इस सवाल ने हमारे सुन्नी भाइयों को हद से ज़्यादा परेशान कर रखा है। सवाल की पेचीदगी और जटिलता का अनुमान पूरे तौर पर तब तक नहीं लग सकता जब तक आपको यह ध्यान न दिला दिया जाय कि इस्लामी धर्म विधि ा (फ़िक़्ह) के ऐतबार से तलाक़ की दो क़िस्में होती है, तलाक़ ''रजयी'' और तलाक़ ''बायिन''।

तलाक़े ''रजयी'' में शोहर को अधिकार होता है कि तलाक़ देने के बाद वो ''इद्दत'' की मीआद के अन्दर जो कम ज़्यादा तीन मीने होती है, चाहे तो अपनी बीवी यानी पत्नी से मेल कर सकता है। ''इद्दत'' की मीआद बीत जाय तो भी उसे दुबारा पत्नी बना सकता है, लेकिन फिर से निकाह के बाद।

तलाक़े बायिन में औरत पति पर हमेशा हमेशा (सदैव) के लिए हराम (वर्जित) हो जाती है, और उससे दुबारा सूत्र जोड़ने के लिए अनिवार्य है कि तलाक़ बायिन देने के बाद ''इद्दत'' की मीआद गुज़र जाए तो फिर उससे कोई और आदमी बाक़ायदा विधिवत ब्याह करे और फिर तलाक़ दे और फिर औरत ''इद्दत'' गुज़ारे, और फिर यह ''इद्दत'' काल बिताने के बाद पहला मर्द उससे दुबारा निकाह कर सकता है। और अगर कोई दूसरा उसे धर्म पत्नी बनाने पर तैयार ही न हो या पत्नी बनाकर फिर छोड़ने पर राज़ी न हो तो इस्लामी धर्म विधि में ऐसा उपाय नहीं कि यह औरत पहले मर्द के साथ पति पत्नि का सूत्र बाध सके या रिश्ता जोड़ सके।

कठिनाई यह है कि इस्लामी धर्म विधि की सुन्नी व्याख्या के हिसाब से अगर कोई व्यक्ति किसी भी ज़बान में तीन बार कह दे कि तलाक़ दी! तलाक़ दी! तलाक़ दी! तो यह तलाक़ ''बायिन'' हो जाती है। तलाक़ ''बायिन'' की इस आसानी से इन साहिबान के लिए बहुत सी कठिनाईयां पैदा हो गयी हैं, जिन्होंने सुन्नी समाज को हिलाकर रख दिया है। आए दिन ये क़िस्से सामने आते रहते हैं कि इन्सान गुस्से में, क्रोध ा और उत्तेजना में तलाक़, तलाक़, तलाक़ कह देता है और जब तलाक़ ''बायिन'' वाक़े (घटित) हो जाती है तो पछतावा होता है और फिर फ़र्याद (आर्त्तनाद) करता हुआ उलमा धर्माचार्यों और मौलवियों के पास दौड़ता है ''कि कोई सूरत निकालिए, कोई युक्ति कीजिए, मेरा घर बरबाद न हो जाए'' धर्म गुरू और मौलवी साहिबान बेचारे क्या करें। कोई सूरत, कोई उपाय हो तब तो निकालें। इस मुबय्यना (उल्लिेखित) हल के अलावा कोई सूरत ही नहीं तो निकालें क्या। वो यह तो कर सकते हैं और कर भी रहे हैं कि लोगों को समझाएं कि ''भइया!'' गुस्से में बावले होकर ऐसी तलाक़े न दिया करो। लेकिन गुस्से में आदमी को नसीहत और सीख याद ही कब रहती है, जो यह नसीहतें और उपदेश कारगर हो सकें।

दरअस्ल, वास्तव में सुन्नी धर्माचार्यों को इस मसले यानी प्रकरण में ''इज्तिहाद'' करना चाहिए। अर्थात दरपेश और विद्यमान हालत को सामने रखते हुए इस्लामी 'फिक़्ह' के माख़जों यानी धर्म विधि के उद्गमों के पुनरावलोकन से नया '''फ़तवा' और नई व्यवस्था देना चाहिए, बल्कि मैं तो यह दरख़ास्त

करूंगा और मेरा अनुरोध यह होगा कि वुस्अत–ए–नज़र (व्यापक दृष्टि) से इस मामले में काम लेके फ़िक्हे अहले–ए–बैत (अहलेबैत के निर्देशों पर आधारित धर्मशास्त्र) की पैरवी करें, उसका अनुसरण करें। अल–अज़हर यूनिवर्सिटी क़ाहिरा के साबिक़ यानी पूर्व रेक्टर शैख़ अहमद शलतूत यह फ़तवा (व्यवस्था) दे ही चुके हैं कि जाफ़री 'फ़िक़्ह' (शीआ धर्म विधि) पर चलने वाले वैसे ही मुक्ति (नजात) पाएंगे जैसे हनफ़ी, मालिकी, शाफ़िई और हम्बली ''फ़िक़्ह'' (धर्म विधि) पर चलने वाले।

हमारे समुदाय फ़िरके में यानी जाफ़री धर्म विधि में तीन बार नहीं तीन लाख बार तलाक़ तलाक़ कहता रहे और तलाक़ हरगिज़ (कदापि) न होगी। हमारे मसलक हमारे विश्वास के हिसाब से निकाह करना जितना सहज है, तलाक़ देना उतना ही कठिन। तलाक़ ''बायिन'' की बात तो अलग रही तलाक़ ''रजयी'' भी बहरहाल उस वक़्त तक नहीं हो सकती जब तक तलाक़ का मख़्सूस ''सीग़ा'' अर्थात निश्चित वाक्य मुंह से कह न दिया जाए। दो आदिल गवाह मौजूद न हों, औरत पाकी (स्वक्षता) की हालत में न हो और शौहर से दूरी की एक मोतअइयन मुद्दत नियत साल बीत न चुका हो। जाफ़री धर्मशास्त्र में जब तलाक़ ''रजई'' में यह दुश्वारियां और रूकावटें हैं तो तलाक़ ''बायिन'' में कितनी दुश्वारी होगी, इसका अन्दाज़ा किया जा सकता है। तलाक़ के मसायल अर्थात सम्बन्धित व्यवस्थाओं की चर्चा का यहां मौक़ नहीं शियों के यहां तलाक़ ने वबा, महामारी का रूप नहीं लिया है, और न इसके बाद वो पेचीदगियां, उलझावे पैदा होते हैं, जिसने हमारे सुन्नी भाइयों की नींद उड़ा रखी है। सुन्नी व्याख्यानुसार इस्लामी ''फिक़्ह'' में इसे यूं भी कह सकते हैं कि सुन्नी ''फ़िक्ह'' में जो दूसरी कमज़ोरी पायी जाती है वो यह है कि एक तरफ़ मर्द को यह छूट है कि मर्द ''बायिन'' तलाक़ तक दे दे, दूसरी तरफ़ औरत किसी दशा किसी हाल में, यह अधिकार यह हक़ अपने हाथों में नहीं रख सकती, लेकिन शिया धर्मशास्त्र में यानी शिया व्याख्यानुरूप इस्लामी ''फिक़्ह'' में ऐसी गुन्जाइश मौजूद है कि औरत अगर चाहे तो निकाह के वक्त ही तलाक़ का हक़ और अधिकार ले सकती है और अगर तलाक़ का हक़ प्राप्त न कर सके और हाकिम–ए–शर्अ यानी धार्मिक प्रशासक या उसके प्रतिनिधि, नुमाइन्दे के सामने यह बात साबित हो जाए कि पति न हुक़ूके जौज़ीयत अर्थात पतित्व का उत्तर दायित्व निभा रहा है न तलाक़ देके पिण्ड छेड़ रहा है तो हाकिम–ए–शर्अ या उसके नुमाइन्दे प्रतिनिधि को यह हक़ हासिल है, यह अधिकार प्राप्त है कि वो पति की मर्ज़ी और इच्छा के बिल्क़ुल विरूद्ध (सर्वथा विपरीत) तलाक़ का सीग़ा जारी कर दे, नियत वाक्य उच्चारित करके औरत को उसके ज़ुलमो–सितम (अत्याचार और यातना) से आज़ाद कर दे। तलाक़ के बारे में ''फ़िक़्ह'' जाफ़री की यह दोनों शिक़ें (दोनों पक्ष) मानस के जेहन को इतना अपील करती है, इतना लुभाती है कि हम बजा तौर पर यह उम्मीद करते हैं कि अब सुन्नी भाई ''शीया फिक़्ह'' की इन दोनों शिक़ों (पक्षों) को क़ुबूल कर लेंगे, ग्रहण कर लेंगे। हम बारगाह–ए–इलाही में दस्तबदोआ (ईश्वर से याचनारत) हैं कि वो इस्लाम के इस समुदाय को इस समाजी मुश्किल, इस सामाजिक समस्या से किसी सूरत जल्द से जल्द नजात दे, (शीघ्र अति शीघ्र छुटकारा प्रदान करे)।

बहर हाल इस बिपता में तो सिर्फ सुन्नी भाई फंसे हैं, लेकिन जिस सवाल ने पूरे हिन्दुस्तानी समाज को मुसीबत में जकड़ रखा है, मुसलमानों के दोनों समुदायों को विशेष रूप से वो है लड़की के लिए ''जहेज़'' का सवाल। खुली बात है कि यह मुसीबत किसी ''फिक़्ह'' में ख़ुदा न ख़ास्ता किसी ख़राबी या दोष की वजह से नहीं बल्कि धर्म सिद्धान्तों (मज़हबी उसूलों) से दूर हो जाने के कारण पैदा हुई।

6 अप्रैल 1985 को कलकत्ता में ''मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड'' की बैठक हुई। इस बैठक में इन सतरों (पक्तियों) का लिखने वाला भी हाज़िर था। जहेज़ की लानत (अभिशाप) पर ग़ौर हो रहा था विचार हो रहा था, तो एक सुन्नी आलिम–ए–दीन (सुन्नी धर्माचार्य) ने बंगाल की किसी जगह का यह वाक़िया बताया कि ''एक ग़रीब बाप के सामने अपनी बेटी की निस्बत सगाई के साथ ही मुतालब–ए–जहेज़ की लम्बी फ़ेहरिस्त (जहेज़ में मांगी गई वस्तुओं की लम्बी सूची) आयी और वो ग़रीब बाप किसी ढंग से ये जहेज़ इकट्ठा करने की अपने आप में अहलियत या क्षमता न पा सका, तो उसने अपने हाथों अपनी बेटी को ज़ब्ह करके खुन आलूदा (रक्तरंजित) छुरी समेत मक़ामी

यानी स्थानीय थाने में जाकर हालत की रिपोर्ट कर दी, प्रथम सूचना दे दी।''

यह तो वो वाक़िया है जहां बेटी की जान गयी। लेकिन हिन्दोस्तान में न जाने कितने मां बाप हैं, जो इस मुसीबत का शिकार होकर अपनी तनदुरूस्ती को बरबाद कर रहे हैं, और अक्सर ज़ेहनी घुटन और अमराज़–ए–क़ल्ब या बहुधा मानसिक क्लेष और हृदय रोग का शिकार हो के मौत के मंह का निवाला बन रहे हैं।,

इस्लाम शायद किसी हद तक कुफ्र को (अनीश्वरवाद को) मोहलत दे दे, जहां कुर्फ हो मगर ज़ुल्म न हो, अनीश्वरवाद हो मगर अत्याचार न हो लेकिन इस्लामी तारीख़ इस्लाम का इतिहास यह है कि इस्लाम के रहनुमाओं ने ख़ल्क़–ए–खुदा पर (ईश्वरीय सृष्टि पर) ज़ुल्म को एक मिनट के लिए बर्दाश्त नहीं किया, चाहे यह ज़ुल्म करने वाला मुसलमान ही क्यों न हो। मुझे यक़ीन है निश्चित रूप से विश्वास है कि हुज़ूर–ए–करीम स0 हमारे पैग़म्बर या उनके अहलेबैत (परिजनों) में से अगर कोई ज़ाहिर बज़ाहिर (खुलेआम) मौजूद होते, और खुदा न ख़ास्ता इस लानत (अभिशाप) को समाज से मिटाने में उनकी नसीहत और उपदेश कारगर न होते, तो वो ऐसे अत्याचारियों के साथ यक़ीनन (निश्चित ही) लोहा ले लेते।

इस्लाम में जहेज़ फ़राहम करना उसको जुटाना होने वाले पति का फ़रीज़ा और कर्तव्य है, लड़की या उसके मां बाप का नहीं। लड़की वालों से जहेज़ मांगना शरीअत–ए–इस्लामी (इस्लामी धर्म शास्त्र) के परख़चे उड़ाना है।

मैं मुल्क के सभी धर्माचार्यों, काज़ी साहबान और निकाह पढ़ने वाले साहबान से दरख़ास्त करूंगा कि उस वक़्त तक कहीं निकाह पढ़ने का वादा न करें जब तक यह इत्मीनान और सुनिश्चित न हो जाय कि लड़के वालों की तरफ़ से लड़की वालों से जहेज़ का मुतालबा नहीं किया गया है (मांग नहीं रखी गयी है) उसी के साथ मैं लड़की वालों से भी दरख़ास्त करूंगा (प्रार्थना करूंगा) कि अगर वो कोई चीज़ अपनी लड़की को अज़ खुद (अपने आप, तोहफे (उपहार) में देना चाहें तो उसे चुपके से दे दें, शादी की महफ़िल में उसकी नुमाइश और दिखावा न किया करें। यह नुमाइश इस कठोर मसले का उलझावा और बढ़ा देती है।



¼'ks u0 10 dk cfd;k———½

का अपनाना कम से कम पहली सूरत के बराबर या इससे अफ़ज़ल है या बिल्कुल शरीयत के क़ानून के मुताबिक़ है। जिस्मानी इबादत से बेशक समाजी इबादत याने खुदा की मख़लूक़ (पैदा किये) को फ़ायदा पहुँचाने का सवाब ज़्यादा है और इस वजह से रवायत में कही गई बात बिल्कुल शरीयत के मुताबिक़ है।

pkSFkh jok;r

इसमें रोज़े के इफ़्तार की फ़जीलत बयान करते हुए ये है कि तुम्हारा मोमिन भाई के रोज़े का खुलवाना और इसके दिल को खुश करना खुद तुम्हारे रोज़े से अफ़ज़ल है।''

इस रवायत से और शरीयत के दूसरे आम क़ानूनी की बुनियाद पर ये नतीजा निकलता है कि रोज़ेदार को इफ़्तार कराने का ये सवाब इस सूरत में है कि जब वह मोमिन इसको पसन्द करता हो और इससे इस के दिल को खुशी मिलती हो, लेकिन अगर इससे उसका दिल दुखता है और चाहे न चाहे ज़िद करके और बार–बार कह करके उसे रोज़ा इफ़्तार करने पर मजबूर किया गया है तो इसमें सवाब नहीं होगा। कुछ लोग यूँही रोज़ा खोलने के लिए बार–बार कहते हैं और रोज़ा न खोलने पर बिगड़ जाते हैं। इनका यह तरीक़ा सही नहीं है।

ikpoh jok;r

इसमें इफ़्तार की फ़जीलत में यह शर्त (बन्धन) है कि '' अपने घर पर बुला कर इफ़्तार कराये। अब अगर इस उसूल पर काम किया जाये तो अगर एक जगह बस आम बात हो और दूसरी जगह किसी चीज़ की क़ैद (बन्धन) लगाई गई हो तो आम बात को भी समझा जाए। तो इसका नतीजा ये है कि अफ़तार की फ़ज़ीलत इस बात पर निर्भर हो कि जब अपने घर पर बुलाकर अफ़तार कराया जाये, लेकिन चूंकि मुस्तहब बातों में उलमा ने इस उसूल को लागू नहीं किया है और इनका नज़रिया इस बारे में सही है। बल्कि यहाँ आम बात और लगी बन्धी अलग–अलग फ़ज़ीलत के मर्तबे के फ़र्क़ पर रखे जाते हैं। तो इसका नतीजा ये होता है कि ज़्यादा सवाब इसी में है कि अपने घर पर बुला कर इफ़्तार कराया जाए और इससे कम सवाब इसमें है कि किसी को आप कुछ अफ़तारी के तौर पर दे दिजीये कि अपने घर पर या जहाँ चाहे इफ़्तार कर लें। **¼'kjh—½**



दीने जाफ़री (जाफ़री मत)

मौलाना सैयद मोहम्मद शाकिर नक़वी साहब क़िब्ले ख़ान अमरोहवी

आमतौर पर हमारे समय में ''इस्ना अशरी धर्म'' को ''जाफ़री मत'' कहकर भी याद किया जाने लगा है और कारण इसका यह बताया जाता है कि जिस वक़्त शासन का संकट जवानी पर था और राजनेता राजनीति में फंसे थे; हज़रत इमाम जाफ़रे सादिक़[अ0] ने इस्लामी शरीअ़त के जो विचार और नियम पेश किए वह सब ''दीन–ए–जाफ़री'' कहलाए। इस निस्बत में ढंग कुछ ऐसा अख़्तियार किया जाता है जैसे इमाम[अ0] ने कोई नया मज़हब ईजाद किया हो। इसी आधार पर कुछ अनभिज्ञ और ना समझ सज्जन कहने लगते हैं कि ''शीआ़ मत'' बाद की पैदावार है। इस भ्रामक प्रचार में कुछ सोंच समझकर और जानबूझ कर के क़स्दन हिस्सा लेने वालों ने हिस्सा लिया और कुछ जानकारी में ऐसा करते रहे और कुछ अनायास मूर्खता में हाँ में हाँ मिलाते हुए आले मोहम्मद[स0] की फ़िक़्ह (धर्मविधि) को ''जाफ़री धर्मविधि'' कहने लगे। क़यामत ये हुई कि बाज़ शीआ़ लेखकों ने भी ठोकर खाई। उन्होंने पुराने ग्रन्थों में फ़िक्हे जाफ़री का ज़िक्र देखा परन्तु वह उसकी अस्ल तक न पहुंच सके। वह फ़िक्हे जाफ़री और फ़िक्हे आले मुहम्मद दोनों परिभाषाओं को एक ही समझ बैठे हालांकि फ़िक्हे आले मुहम्मद ''फ़िक़्ह–ए–इस्ना अशरी और फ़िक़्हे जाफ़री एक अधूरी (अपूर्ण), नाक़िस और नामुकम्मल निस्बत है। फ़िक़्हे आले मोहम्मद[स0] वह है जो किताब–ए–अली[अ0] और मुसहफ़े फ़ातिमा[स0] की शक्ल में हज़रत पैग़म्बर[स0] ही के युग शुभ में संकलित हो चुका था और ख़िलाफ़ते राशिदा के दौर में इसी की बुनियाद पर फ़ैसले किये जाते थे और जटिल समस्याओं में ख़लीफ़ा अहलेबैत[अ0] से सहायता लेते थे। लेकिन इस्लामी इतिहास की करवटों के साथ कि फ़िक़्हे अहलेबैत[अ0] के विकल्प सामने आते गये और बनी अब्बास का काल आते आते हनफ़ी, शाफ़ई मालिकी और हंबली फ़िक़्ह प्रचलित हो गयी।

लगभग इसी ज़माने में हज़रत इमाम जाफ़रे सादिक़[अ0] की नस्ल की एक शाख़ ''इस्माईलियों'' के नाम से उभरी और ''फ़ातिमी हुकूमत'' के नाम से अपने को परिचित कराने लगी। ज़ाहिर है कि यह लोग अपने राज्य के दायरे में प्रचलित फ़िक़्ह को '' फ़िक़्हे फ़ातिमी'' कहना चाहते थे लेकिन इस्ना अशरी समुदाय ने अपनी व्यवहार कुशलता से ऐसा होने नहीं दिया बल्कि उनकी फ़िक़्ह को ''फ़िक़्हे जाफ़री'' और उनके मत को जाफ़री मत कहने लगे। कारण यह था कि हज़रत इमाम जाफ़रे सादिक़[अ0] के बाद लोग फ़िक़्हे अहलेबैत[अ0] से बिल्कुल अलग हो गये थे और ''छह इमामी'' या ''जाफ़री'' कहलाने लगे थे। ख़ोजा और बोहरा भाइयों में आज भी यह मत पाया जाता है और इमाम जाफ़रे सादिक़[अ0] के बाद इनका मत और शरीअ़त दोनों इस्ना अशरी मत और शरीअ़त से अलग है। इसलिए इन लोगों का मत जाफ़री हैं और इमामिया मत इस्ना अशरी मत है।

हज़रत इमाम जाफ़रे सादिक़[अ0] को इस्ना अशरी मत का संस्थापक समझना वैसा ही है जैसे हुज़ूर[स0] का इस्लाम को बानी कह दिया जाता है हालांकि क़ुर्आन में स्पष्ट रूप से बताया है यह शरीअ़त तो तुम्हारे बाप ''इब्राहीम'' की शरीअ़त है और इसी से तुम्हारा नाम मुसलमान रखा है। फिर भी मुसलमानों की ज़बान पर हुज़ूर के लिए बानी–ए–इस्लाम का नाम अवश्य आता है बस इसी तरह कुछ परिस्थितियों की पेचीदगी, कुछ लोगों की ग़लत–फ़हमी कुछ राजनीति के दबाव से फ़िक़्हे आल–ए–मोहम्मदस0 को फ़िक़्हे जाफ़री कहा जाने लगा। यह फ़िक़्ह बारह इमामों में से किसी भी नाम से मनसूब हो सकती है लेकिन यह इन सब हज़रात की मुश्तरका तालीम है जो क़ुर्आन और हज़रत पैग़म्बर की शिक्षा पर आधारित है। इसलिए इसे केवल ''फ़िक़्हे जाफ़री'' कहना सामान्य मानस को ग़लत ढ़रें पर लगाना है। यह अलग बात है कि इसे इतना मशहूर किया गया कि हम खुद इस ग़लतफहमी का शिकार हो गये।



ख़बर नामा

नूरे हिदायद फ़ाउण्डेशन में यौमे खुमैनी[रह0]

4 जून 2014 ई० को रहबरे इन्क़ेलाबे इस्लामी ईरान आयतुल्लाहिल उज़मा रुहुल्लाह खुमैनी[रह०] की पच्चीसवीं बरसी के मौक़े पर नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन के दफ़्तर स्थित इमामबाड़ा गुफ़रानमआब में यौमे इमाम खुमैनी[रह०] मनाया गया इस मौक़े पर मुख़्तलिफ़ उलमा, उदबा और शोअरा ने अपने अपने अन्दाज़ में इमाम खुमैनी की ज़िन्दगी के मुख्तलिफ़ पहलुओं का तज़किरा किया। जल्से की इख़्तेतामी तक़रीर असीफ़ जायसी सम्पादक मासिक शुआ-ए-अमल ने की। उन्होंने तक़रीर में कहा कि आज दुनिया के मुसलमानों का सर दुनियां में जितना भी ऊँचा है वह सिर्फ़ और सिर्फ़ इमाम खुमैनी[रह०] के ज़रिये लाए हुए इन्क़ेलाबे इस्लामी ईरान का सदक़ा है। आख़िर में इमाम खुमैनी[रह०] और दीगर शोहदा-ए-इन्क़ेलाबे इस्लामी के ईसाल के लिए फ़ातेहा ख़्वानी की गई।



शिया नेशन डे

13 रजब 1435 हि० को नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन में "शिया नेशन डे" मनाया गया। जिसमें मज़ामीन निगार हज़रात और शोअरा-ए-कराम ने मदहे अमीरुल मोमनीन हज़रत अली-ए-मुर्तज़ा अलैहिस्सलातो वस्सलाम के बाद गुफ़रानमआब[रह०] के कारनामों खुसूसन हिन्दोस्तान में शियों की पहली नमाज़े जमाअत 13 रजब 1200 हि० और पहली नमाज़े जुमा 27 रजब 1200 हि० के क़याम का ज़िक्र किया। वाज़ेह रहे कि 13 रजब सन! 1200 हि० से ही हज़रत गुफ़रानमआब[रह०] ने हिन्दोस्तान में बहैसियत क़ौम मनवाने की तहरीक शुरू की थी। मक़ाला निगार हज़रात ने हम्दे परवरदीगार व नआत सरवरे कायनात स० के बाद ग़ैर मुन्क़सम हिन्दोस्तान में गुफ़रानमआब का पहली बार नमाज़े जुमा के क़ायम करने का मोहकक़ाना अन्दाज़ में तज़किरा किया।

गुफ़रानमआब[रह०] की तहरीक

1. अपने अक़ाएद समझो। 2. अपने मज़हबी आमाल बजा लाओ। 3. अपनी मज़हबी हैसियत के इज़हार में सोच विचार न करो। ये ऐसी तहरीक है जिसे हर वक़्त ज़िन्दा रखने की ज़रूरत है और इसी तहरीक ने हिन्दुस्तान में शियों के वजूद को ज़ाहिर किया। बेहतर है कि हम सब 13 रजब को थोड़े ही वक़्त के लिए "शिया नेशन डे" मनायें और इस तहरीक को ज़िन्दा करें। गुफ़रानमआब[रह०] की तहरीक में दूसरे मज़ाहिब से ख़िताब नहीं था आज भी उसी तरह तहरीक को चलाने की ज़रूरत है।

हज़रत गुफ़रानमआब[रह0] का देसा

19 रजब 1435 हि० को हज़रत गुफ़रानमआब की तारीख़े वफ़ात पर मुजद्दिदे मिल्लत आयतुल्लाहिल उज़मा सै० दिलदार अली नक़वी गुफ़रानमआब (मुतवफ़्फ़ी 1235 हि०) के ईसाले सवाब के लिए मजलिसे अज़ा-ए-सैय्यदुश्शोहदा[अ०], खुद गुफ़रानमआब[र०अ०] के तामीर कराए हुए इमामबाड़े में हुई। जिसे मौलाना सै० तक़ी रज़ा साहब ने ख़िताब फ़रमाया। मजलिस में बड़ी तादाद में मोमिनीन ने शिरकत की और मजलिस के आख़िर में वक़्फ़ हज़रत गुफ़रानमआब[र०अ०] की तरफ़ से मोमिनीन के लिए खाने का इन्तिज़ाम भी किया गया।



vk;rqYykfgy mtek lS fnynkj vyh udoh
xQj+kuekkWV dsf[kne kr ij y[kuÅ esa lSeukj

19 मई 2014 मताबिक़ 19 रजब 1435 हि0 (बुधवार) को छोटा इमामबाड़ा हुसैनाबाद लखनऊ में दिलदार अली गुफ़रानमॉब फ़ाउण्डेशन की जानिब से एक अज़ीमुश्शान सेमिनार आयतुल्लाहिल उज़्मा सै0 दिलदार अली गुफ़रानमॉब की दो सौ साला बर्सी पर मुनअक़्क़िद हुआ जिसमें कसीर तादाद में उलमा व दानिशवर हज़रात के अलावा मोमिनीन ने शिरकत की। छोटे इमामबाड़े में मुनअक़्क़िदा सेमिनार का तिलावत कलाम पाक से आग़ाज़ हुआ उसके बाद इस्तेक़बालिया तक़रीर करते हुए दिलदार अली गुफ़रानमॉब फ़ाउण्डेशन के बानी मौलाना सैफ़ अब्बास नक़वी ने कहा कि आज दो सौ साल गुज़रने के बाद भी हज़रत गुफ़रानमॉब के आसार मौजूद हैं यही उनकी हयात की दलील है। मौलाना ने गुफ़रानमॉब की सौ साला यादगार पर अल्लामा सै0 गुलाम हसनैन कन्तूरी के जुम्लों को दोहराते हुए कहा कि गुफ़रानमॉब ने दीन का चिराग़ घर घर में रौशन कर दिया जिसको आज तक एक महीना कम सौ बरस गुज़रे, मगर आज भी हमारे मुल्क में 1000 से ज़्यादा उलमाए दीन मौजूद हैं। उसके अलावा मौलाना ने मुफ़्ती सै मुहम्मद कुली की तहरीरों से मालूम होता है कि हिन्दुस्तान के पहले मुजतहिद जामेउश्शराएत व मरज–ए–तक़लीद व मस्नदे इज्तेहाद आरास्ता करके दर्से इज्तेहाद देने वाले जनाब गुफ़रानमॉब ही थे उसके अलावा मौलाना सैफ़ अब्बास नक़वी ने इन्तेसारूल इस्लाम स0 30 के एक इक़्तेबास को बयान करते हुए कहा कि अल्लामा कन्तूरी तहरीर फ़रमाते हैं कि इशाअते दीन और ताईदे इस्लाम जिस क़द्र कन्तूर से हुए उसको कौन नहीं जानता मगर हम पर हज़रत गुफ़रानमॉब के एहसानात का शुकरिया करना वाजिब है जिनकी बदौलत हम उस क़ाबिल हुए। उन्होंने कहा कि खान्दाने नजमुल मिल्लत की अज़ीम शख़्सियत अल्लामा सै0 मोहम्मद रज़ी मुजतहिद और दीगर उलमा की तहरीरों में मुस्तक़बिल उस बात का तज़केरा मिलता है कि नमाज़े जुमा और नमाज़े जमाअत 1200 हि0 में जनाब गुफ़रानमॉब ने क़ायम की थी इस्तेक़बालिया कलमात के बाद सेमिनार का इफ्तेताह हुज्जतुल इस्लाम मौलाना सै0 हमीदुल हसन साहब प्रिन्सिपल जामिया नाज़मिया लखनऊ ने किया और सदारत मुफ़क्किरे इस्लाम डॉ0 मौलाना कल्बे सादिक़ साहब क़िब्ला ने की इफ्तेताही तक़रीर करते हुए मौलाना सै0 हमीदुल हसन साहब ने इल्म की अफ़ादियत पर ज़ोर दिया और जनाब गुफ़रानमॉब की तसनीफ़ इमादुलइस्लाम की खुसूसियात को बयान किया। मौलाना ने कहा कि इल्मे कलाम पर ये ऐसी किताब है जिसकी नज़ीर मुम्किन नहीं है और फ़रमाया कि दुनिया में कुतुब अरबा के बाद इस किताब का जवाब नहीं नेज़ फ़रमाया कि गुफ़रानमॉब हिन्दुस्तान के पहले मुजतहिद जामेउश्शराएत और नमाज़ जुमा व जामअत के बानी हैं। इसके अलावा मौलाना ने ख़ान्दान इज्तेहाद के उलमा का तज़किरा करते हुए उनकी ख़िदमात पर रौशनी डाली। डॉ0 कल्बे सादिक़ साहब ने तक़रीर करते हुए कहा कि हर इन्सान के लिए इल्म हासिल करना बहुत ज़रूरी है कि हम जनाबे गुफ़रानमॉब की दो सौ साला याद मना रहे हैं और उनका इल्म उनकी क़यामत तक ज़िन्दा रखेगा। उन्होंने जनाबे गुफ़रानमॉब की तसानीफ़ का ज़िक्र करते हुए कहा कि उन्होंने मुख्तलिफ़ मौज़ूआत पर कुतुब तहरीर करते हुए अज़ाए सैय्यदुश्शोहदा की तरफ़ लोगों की खास तवज्जो मरकूज़ कराई और हम आज जिस अन्दाज़ में अज़ादारी को देखते हैं वो तर्ज़ जनाब गुफ़रानमॉब का दिया हुआ है इज़्ज़तमॉब राजा मुहम्मद अमीर मुहम्मद खां आफ महमूदाबाद ने तक़रीर करते हुए अपने ख़ानवादे और ख़ानदान इज्तेहाद के रवाबित का तज़किरा करते हुए कहा कि जनाबे गुफ़रानमॉब ने जिस मसनदे इल्म को सजाया था आज उसी की बरकत और फ़यूज़ का असर है कि हर शहर और गांव में मस्नदे इल्म बिछी हुई है और इल्म तक़सीम हो रहा है। राजा साहब ने खास बात ये कही कि गुफ़रानमॉब ने नहर आसिफ़ी जब बनवा दी तो वहां की आबादी कई गुना बढ़ गयी और वहां मुअल्लेमीन, मुतअल्लेमीन व मोमिनीन की तादाद में जो इज़ाफ़ा हुआ और होता रहेगा उसका सवाब गुफ़रानमॉब को मुस्तक़लन मिलता रहेगा जनाब मौलाना इब्ने अली साहब वाएज़, मौलाना सै0 जाबिर जौरासी वग़ैरह ने भी गुफ़रानमॉब की हयात और ख़िदमात पर रौशनी डाली। आख़िर मे जनाबे गुफ़रानमॉब के ईसाले सवाब के लिए मजलिस मुनअक़्क़िद हुई जिसको क़ाएदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद नक़वी साहब ने ख़िताब किया प्रोग्राम के इब्तेदाई मराहिल में स्टेज पर मौजूद उलमा के ज़रिया हज़रत गुफ़रानमॉब पर मशहूर सहाफ़ी सै0 हुसैन अफ़सर नक़वी के मुरत्तब करदा सुविनियर का रस्म अजरा हुआ। निज़ामत के